गुप्तकालीन भारत में व्यापारी संगठनः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 संजय कुमार*

गुप्त काल में व्यापार के स्पष्ट दो रूप थे। एक का नियंत्रण श्रेष्ठि करते थे। उनकी दूकान नगरों और ग्रामों में प्रायः सभी जगह होती थी। सार्थवाह एक स्थान से दूसरे स्थान तक आते–जाते थे और इस प्रकार वे देश–विदेश का माल एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का काम करते थे। इस प्रकार वे यातायात के व्यवस्थापक और थोक व्यापारी दोनों का काम करते थे।

समान अथवा संयुक्त अर्थवाले व्यापारी, जो मण्डियों के साथ व्यापार करने के लिए एक सार्थ टांड लादकर चलते थे, वे सार्थ कहलाते थे और उनका वरिष्ठ नेता ज्येष्ठ व्यापारी सार्थवाह कहलाता थ। गुप्त काल में सार्थ व्यवस्था का क्या रूप था, वह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता पर अनुमान किया जा सकता है कि वह पूर्व परम्पराओं के उसी क्रम में रहा होगा जिसका परिचय जैन साहित्य में प्राप्त होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि कोई एक उत्साही व्यापारी सार्थ बनाकर व्यापार के लिए निकलता था और उसके सार्थ में अन्य उत्साही व्यापारी भी सम्मलित हो जाते थे। सार्थ में सम्मिलत होने वाले व्यापरियों के बीच एक प्रकार की साझेदारी का समझौता था और हानि लाभ के संबंध में उनके बीच में अनुबन्ध होता था। सार्थ मे सम्मिलत होने वाले व्यापारियों की साझेदारी समान हो, यह आवश्यक न था। एक ही सार्थ के सदस्य हानि–लाभ और पूंजी की साझेदारी की .ष्टि से कई दलों में बँटे हो सकते थे। उन्हें इस सम्बंध में पारस्परिक संबंध स्थापित करने की पूरी छूट होती थी। परन्तु एक यात्रा में किसी एक सार्थवाह के नेतृत्व में यात्रा करने वाले सभी व्यापारी चाहे उनमें पूँजी की साझेदारी हो या न हो, सांगात्रिक कहे जाते थे और उन्हें कतिपय नियमों और सार्थवाह के आदेशों का समान रूप से पालन करना पड़ता था। उन्हे सार्थ के रूप में किन उत्तरदायित्वों को निभाना और मार्यादाओं का पालन करना पड़ता था। इसकी विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है।

***एम0ए0, पीएच0डी समाजशास्त्र, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया**

गुप्त काल भी कृषि प्रधान समाज था। वैसे देखा जाय तो उस काल में भी जीवन यापन के लिए पशुपालन एवं .षि मुख्य साधन थे, परन्तु समाज का एक महत्वपूर्ण वर्ग वैश्व समाज व्यापार के कार्य में लगा हुआ था ओर उससे प्राप्त आय से अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टी के अतिरिक्त अपने व्यापार का विकास भी करता था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अस्तित्व भी था। कूट वाणिज्य जातक में वनारस को व्यापारियों का उल्लेख है। जो 500 वैगन व्यापार की वस्तुएँ उस देश के संबंधित जनपद में लाये थे। इस व्यवसाय में उनका उद्देश्य आपस में विणिमय करके समान लाभ प्राप्त करने का था। श्रावस्ती के भी दो व्यापारियों का उल्लेख साझेदारी व्यवसाय में शामिल होने का मिलता है जो 500 वैगन माल लाद कर पूर्व से पश्चिम की ओर व्यवसाय हेतु यात्रा कर रहे थे।[1] अमर कोश से पता चलता है कि चमड़े के जूते, पंखे, बोतल आदि वस्तुएं तैयार होती थी। इस काल में चित्रों और मूर्तियों से भी जूतो के नमुनों का पता चलता है। हाथी दाँत का प्रयोग विभिन्न वस्तुओं के निमार्ण में करते थे। जैसे सिंहासन, मंजूषा और आभूषण। हाथी दाँत की बनी हुई मुद्राएं इलाहाबाद के समीप भाटा से प्राप्त हुई है।[2]

भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग से विख्यात गुप्त काल का सर्वेक्षण करने के पश्चात इसकी मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करना संगंत होगा। इसी युग में देश का एकीकरण किया गया। गुप्त वंश के अभ्युदय से पहले भारत अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। गुप्त साम्राज्यवाद के कारण वे राज्य समाप्त हो गए और भारत में एक संयुक्त संकेन्द्रित तथा सशक्त प्रशासन की स्थापना हुई।

गुप्त काल में घरेलू तथा विदेशी वाणिज्य तथा व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई। चन्द्रगुप्त द्वितिय द्वारा पश्चिमी क्षत्रपों के राज्य को भी साम्राज्य में मिला लेने के बाद वे और भी बढ़ने लगे। वाणिज्य और व्यापार की वृद्धि से देश की सम्पत्ति तथा समृद्धि में भी वृद्धि हुई। भारत के पश्चिमी तट पर पाए गऐ बहुत से सोने के सिक्कों से ज्ञात होता है कि भारत का व्यापारिक संतुलन उसके हित में था।[3]

विभिन्न साहित्यों व ऐतिहासिक ग्रन्थों के अध्ययन के उपरान्त गुप्त कालीन आयत–निर्यात के संबंध में जो धारणा बनाई गई है उसमें पेरिम्लस से ज्ञात होता है कि भारत में लाल मिर्च, हाथी दाँत ,मोती, रेशम, हीरा, मणि, मशाले आदि विदेश को निर्यात किये जाते थे। कारूमास के कथना अनुसार भारत के पूर्वी तट से सिघल देश फारस अवीसिनिया के बन्दरगाहों से निर्यात किये जाते थे। मालावार के तटवर्ती पाँच बन्दरगाहों से लाल मिर्च का निर्यात होता था। अरव व्यापारी भारत से मोती, जवाहरात और सुगंधित द्रव्य ले जाते थे। गुप्त कालीन साहित्य मे प्रायः चीनाशुकों का उल्लेख मिलता है। जिनसे अनुमान होता है कि चीन से रेशमी वस्त्र इस देश में आता था।

महावाणिज जातक में व्यवसायियों के अस्थायी साझेदारी का उल्लेख है सेरी वाणिज्य जातक में दो सौदागरों का उल्लेख किया है जो साझेदारी के रूप में व्यापार कर रहे थे।[4]

उत्तरापथ के अश्व के व्यापारी अपना व्यवसाय संयुक्त रूप से करते सुने गये थे।[5]

बृहस्पति ने साझेदारों के चयन हेतू कुछ कठोर नियमों का उल्लेख इस उद्देश्य से किया है कि उन नियमों के व्यवहार पर संयुक्त व्यापार की अधिक सफलता निर्भर करती है। जैसे प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा व्यापार अथवा अन्य व्यवसाय अयोग्य एवं आलसी व्यक्तियों तथा बीमार तथा दुर्भाग्यवाले व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से व्यापार वगैरह नही करना चाहिए।[6]

उन्होने ने लिखा है कि संयुक्त रूप से अपना व्यवसाय कुलीन परिवार के व्यक्तियों, चतुर, कार्यशील, बुद्धिमान सिक्कों से पूर्णतः परिचित वार्षिक आय व्यय का लेखा रखने में निपुण ईमानदार एवं साहसी व्यक्तियों के साथ करना चाहिए।[7] वाणिज्य और उद्योग में लगे लोगों का एक और संगठन निगम कहलाता था। यह श्रेणी से किस प्रकार भिन्न था इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं प्राप्त होता पर उपलब्ध सामग्री के अध्ययन से अनुमान होता है कि निगम किसी एक व्यवसाय के संगठन न होकर अनेक व्यवसायों के समुह का संगठन था। यह संगठन मुख्यतः तीन वर्गो का था दुसरा निगम देश विदेश से माल लाने वाले सार्थवाह लोगों का था, और तीसरा निगम श्रेष्ठी लोगों का था जो कदाचित स्थानीय व्यवसायी होते थे एवं एक स्थान पर दुकान खोलकर स्थानीय लोगों की आवश्यक्ता पूर्ति किया करते थे। श्रेष्ठि और कुलिकों के अपने संगठन होने का पता उनकी मुहरों से लगता है। मीटा (इलाहाबाद) से कुलिक निगम की और वैशाली से श्रेष्ठि निगम की मुहरें मिली है। इसके अतिरिक्त अभिलेखों में आए प्रथम कुलिक नगर श्रेष्ठि के उल्लेखों से पता मिलता है, जो उनके प्रधान के बोधक है।

उद्योग, वाणिज्य तथा बैंकिग के लिए अलग अलग श्रेणियों का निगम थे। श्रेष्ठियों कलाकारों व्यापारियों आदि वर्गो तथा जुलाहों का भी उल्लेख मिलता है। कभी – कभी कई श्रेणियों को मिलाकर एक केन्द्रीय श्रेणी बनाई जाती थी। जैसे श्रेष्ठि कुलिन निगम अर्थात साहुकारों एवं कारिगरों का निगम और श्रेष्ठी सातवाह कुलिक निगम साहुकारे कारीगरों एवं व्यापारियों का निगम बैंकिग इन श्रेणियों का एक मुख्य कार्य था। संघ स्थायी और न बदलने वाला दान प्राप्त करते थे । इस धन में से वे संघ दान देनेवालों बताऐ गऐ पात्रों को धन दिया करते थे। जमा करने वाले पात्रों को पंजीयित किया जाता था। बिहार या मंदिर के लिए दिये गऐ दान संघ की प्रबंधक परिसर स्थायी दान के रूप में लिया करती थी। दैनिक पूजा, इत्र,

आहुति , फूलों व बत्तयों के लिए तेल आदि मंदिर के लिए दान लिया करते थे।[8] बृहस्पति ने सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से दंडित करने के सिद्धांतों का वर्णन किया है। प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से साझेदारी संस्था के प्रति अपने व्यवहार के लिए सदैव उत्तरदाई होता था। जब किसी प्रकार अवाक्षित एवं धोखाधड़ी के कार्य का पता लगता था तो वंचक शपथ लेकर उसे स्पष्ट करता था।[9] साझेदारों को संदेहजनक मामलों में एक दूसरे के लिए न्यायकर्ता एवं गवाह के रूप में घोषित किया जाता था।[10] यदि उसका अपराध सिद्ध हो जाता तो उसकी पूँजी उसे वापस कर दी जाती थी। और उसे संयुक्त स्टॉक कम्पनी से निष्काषित किया जाता था दूसरी ओर वृहस्पति ने लिखा है जो साझेदार अपने प्रयास से संयुक्त स्टॉक कि रक्षा किसी प्रकार की खतरे से करता था तो उसे उसी संस्था द्वारा पुरस्कार के माध्यम से उस स्टॉक का दसवाँ हिस्सा प्रदान किया जाता था।[11]

वस्तुतः स्थिति जो हो, श्रेष्ठी और निगम वाणिज्य और उघोग की दो महत्तवपूर्ण संस्थाएं थी जो गुप्त काल में जागरूक थी। नारद स्मृति में कहा है कि इन संस्थाओं के लिखित नियम थे जो समय कहे जाते थे। याज्ञ वलक्य स्मृति के अनुसार इन संस्थाओं के बनाए गए नियमें और सिद्धांतों को मानना और पालन करना पड़ता था। जो उनका उलंघन करता वह उससे होनेवाली हानि के लिए उत्तरदायी होता नियम का उलंघन करना बेईमानी का काम करने पर सदस्य संस्था से निकाल दिए जाते, यदि किसी सदस्यों में परस्पर किसी बात पर विवाद उठ खड़ा होता तो उसका निपटारा इन सदस्यों द्वारा ही किया जाता था। इस संस्था को अपने सदस्यों को दण्डित करने का पूर्ण अधिकार था। राज्य के न्यायालयों में इस संस्था के प्रतिनिधी रहते थे और प्रसाशन भी योगदान देते थे। इनका राज्य के साथ भी किसी प्रकार के निकट का संपर्क था यह मुहर से अनुमान किया जा सकता था। जिसमें निगम की मुहर के साथ युवराज पादिप कुमारामात्याधिकरण की मुहर की छाप है । इसी प्रकार कदाचित वे धार्मिक संस्थाओं से भी संबंध रखते थे। यह भी एक मुहर से ज्ञात होता है जिसपर निगम के साथ धर्म वचनों का भी छाप है।

उद्योग एवं व्यवसाय के लिए आवश्यक है कि प्रचुर पूँजी उपलब्ध हो उसके लिए व्यक्तिक पूँजी ही प्रर्याप्त नहीं है अतः आवश्यकता इस की होती है कि दूसरों से भी इसके लिए ऋण प्राप्त किया जाय यह कार्य आजकल बैको द्वारा किया जाता है। स्मृति ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के ऋण देने की प्रथा प्रचीन काल से चली आ रही है। और गुप्त काल में भी प्रचलित थी। गुप्त काल में ऋण देने का काम किस सीमा तक होता था उसके संदर्भ में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह काम श्रेणी और निगम निचित रूप से करते थे। ये

संस्थायें ही आज के बैको के तरह ही लोगों से थोड़े सूद पर धन प्राप्त कर अधिक सूद पर व्यपारियों को ऋण देती थी।

सहकारिता की भावना मनुष्य में एक सामाजिक स्वतः प्रवृति है। संघ सामाजिक अभिरूचि का एक स्वभाविक प्रतिरूप है। परिणाम स्वरूप सामान्य उदेश्य के लिए एक विशेष इकाई का निमार्ण होता है। गुप्तकाल के आर्थिक जीवन में स्वतः इसका स्पष्टीकरण प्राप्त होता है।

निष्कर्षतः—गुप्त काल में व्यापारिक संगठन का प्रचलन था। संगठन के लिए नियम बने हुए थे। इन्ही नियमों के तहत संघ अपना अपना व्यापारिक कार्य सम्पन्न करते थे। वास्तव में गुप्त काल भारत के इतिहास का स्वर्ण युग था।

संदर्भ—सूची

1 जातक—3 पृष्ठ 181

2 महाबग्गा — 811

3 प्राचीन भारत का इतिहास विघाध महाजन एस0 चन्द एण्ड कम्पनी राम नगर नई दिल्ली 110055 पृष्ठ सं0 560

4 जातक — 1 पृष्ठ 111

5 उतरापथ का अश्ववान्ज्य जातक — 2

6 याज्ञवलक्य स्मृति 2(259)

7 'बृहस्पति स्मृति — 13.3

8 विधाधर महाजन पृष्ठ सं0 558

9 जातक पृष्ठ सं0 404

10 जातक पृष्ठ 405

11 सम इकोनामिक इंस्टीटयूशन ऑफ एशियेन्ट इण्डिया यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, 1942 पृष्ठ 303

Representation Of The African-American 'Other' In Harper Lee's 'To Kill A Mocking Bird'

Sharanya Thakur*

Consciousness is an awareness of what is happening around us. It is also an ability to think about matters related to our social, cultural and Political existence. *A*n intentional effort required by every individual to know what social justice is and to maintain a moral a moral responsibility to defend it in all circumstances. Inspite of such self-consciousness, certain sections of society, world over, find it a daunting task to defend their consciousness , to withstand pressure from those who exercise arbitrary power and their discriminating oppressive practices.

In order to retain and control such power the dominant groups devises different ways and methods to pressurize 'others' into complete subjugation. While successful resistance to oppression informs the literatures written by these historically marginalized people, it is imperative to be attentive to the simultaneous silencing that has not ended.

I aim to demonstrate power structures inherent in Language define and delimit the identity of In the African Americans.

In "Loose Canons", a compilation of critical essays on race, African American literature and multiculturalism, Henry Louis Gates expresses his concern and intellectual engagement with the other and their representation in the written or spoken form. He goes on to explain:

> "What I mean by citing these two overworked terms is precisely this how blacks are figures in literature and also how blacks figure, as it were in literature of their own making " (Gates *57)*

How African-Americans are figures in literature can be a understood examining *t*he act*ual s*hi*fts* in language *both* conscious and subconscious, different linguistic tropes and manoeuvers, made by non-Black artists. Presumptions, patterns of misappropriation and erasure fall along familiar

***Add: N/9, Patrakar Nagar, Kankarbgh, Patna**